|| श्रीहरिः ||

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 11: विश्वरूपदर्शनयोग

4/4 (श्लोक 41-55), शनिवार, 31 मई 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/FtoKWiA2D8Y

अर्जुन का श्रीभगवान् से चतुर्भुज रूप दिखाने का आग्रह

सुमधुर प्रार्थना, हनुमान चालीसा पाठ, दीप प्रज्वलन तथा गुरु वन्दना के साथ सत्र का शुभारम्भ हुआ। श्रीभगवान् की अतिशय मङ्गलमयी कृपा से हम लोग ऐसे भाग्योदय को प्राप्त कर रहे हैं जिससे हमारा यह मनुष्य जीवन पूर्णतः सफल हो रहा है, तेजस्विता को प्राप्त हो रहा है, सार्थकता को प्राप्त हो रहा है। पता नहीं हमारे इस जन्म के कोई सुकृत है, पूर्वजन्मों के कोई सुकृत हैं अथवा किसी सन्त महापुरुष की कृपादृष्टि हम पर हो गई जिस कारण हमारा ऐसा भाग्योदय हुआ है कि हम अपने जीवन के कल्याण के लिए, अपने जीवन को सफल बनाने के लिए लग गए हैं। हम श्रीमद्भगवद्गीता का चिन्तन भी करते हैं, स्वाध्याय भी करते हैं, अब स्तर चार में आ गए हैं तो उच्चारण तो सीख ही लिया है। अब जब कुछ गहराई में जाकर श्रीमद्भगवद्गीता के सूत्रों को ग्रहण कर रहे हैं, उन्हें जानने का प्रयास कर रहे हैं तो इसके आनन्द की अनुभूति भी इन चिन्तन सत्रों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। विवेचन सुनते समय आपकी भाव भङ्गिमा देखकर बहुत कुछ ध्यान में आता है तथा विवेचन के उपरान्त जो प्रश्नोत्तर होते हैं, उनसे भी बहुत कुछ ध्यान में आता है। इस कारण यह तो स्पष्ट है कि हमारी पात्रता या योग्यता तो ज्ञात नहीं लेकिन यह अवश्य प्रतीत होता है कि हम सबका भाग्य उत्तम है, हम सबके ऊपर श्रीभगवान् की कृपा स्पष्ट रूप से बरस रही है। यह तो नेत्र बन्द करके भी दिखाई देता है कि हमारा मन सत्कार्यों में लगने लग जाए, श्रीमद्भगवद्गीता में लगने लग जाए, भगवत् सेवा में लगने लग जाए, श्रीभगवान् के वाक्य को सुनने समझने में लग जाए- इससे बड़ी कृपा तो हो ही नहीं सकती। सबसे बड़ी बात तो इस मन को साधना है। हमारा मन कहीं लगता नहीं है। हमारा मन यहाँ लगने लगा है। हम पूरे सप्ताह प्रतीक्षा करते हैं कि फिर विवेचन में कुछ नया सुनने को मिलेगा। यह मन श्रीभगवान् की कृपा के बिना नहीं लग सकता। यह बहुत अद्भुत बात हमारे साथ हो रही है और हम अत्यन्त अद्भुत अध्याय का विवेचन सुन रहे हैं। यह बहुत सुन्दर अध्याय है। **वैसे तो श्रीमद्भगवद्गीता के सभी अध्याय मणियाँ हैं किन्तु इन सभी अध्यायों में ग्यारहवाँ अध्याय कौस्तुभ मणि है।** हमें श्रीभगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त होता है। अर्जुन की कृपा से हम सबको श्रीभगवान् के उस विश्वरूप का दर्शन हो रहा है। यह श्रीभगवान् आगे बताते हैं कि किसी को भी किसी भी प्रकार से यह दर्शन सम्भव नहीं है। हम क्या श्रीभगवान् के दर्शन करने के अधिकारी हैं? श्रीभगवान् तो कह रहे हैं कि जो अधिकारी हैं, उनको भी यह अत्यन्त दुर्लभ दर्शन प्राप्त नहीं होता है फिर हम तो बिल्कुल भी अधिकारी नहीं हैं किन्तु उसका जो वर्णन यहाँ आता है उससे भी स्पष्ट हो जाता है कि हम पर श्रीभगवान् की इतनी अधिक कृपा हो रही है। अर्जुन ने श्रीभगवान् से प्रार्थना की कि "आपने अभी जो विभूतियाँ बतायी हैं, कृपया वे दिखाइए।" श्रीभगवान् ने कहा, "ठीक है! देखो।" फिर श्रीभगवान् ने मानो कोई चलचित्र आरम्भ कर दिया हो। अर्जुन मुग्ध हो गये और सोचने लगे कि "यह क्या है! यह सब मैं क्या देख रहा हूँ! मुझे तो लगा था कि मैं श्रीभगवान् से निवेदन करूँगा तो वे अपनी कोई सुन्दर सी छवि दिखा देंगे लेकिन यह क्या!" श्रीभगवान् कहते हैं

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो, लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे, येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।।

अर्थात् “मैं तो काल के रूप में प्रकट हुआ हूँ। मैं काल हूँ। इस समय तुम रणभूमि में हो, अतः तुम्हें मेरा काल रूप दिखेगा।" अर्जुन भयभीत हो गये, किन्तु अब अर्जुन को ग्लानि प्रतीत हो रही है। उन्हें इस बात की ग्लानि हो रही है कि “मैं तो इन्हें अपना समकालीन मित्र मानता था।" यद्यपि अर्जुन श्रीकृष्ण को केवल मित्र नहीं मानते थे, नहीं तो वे एक अक्षौहिणी सेना को छोड़कर निहत्थे श्रीकृष्ण को कदापि नहीं चुनते। इसलिए अर्जुन को कहीं न कहीं यह आभास तो था क्योंकि पूर्वजन्म में उनका नर-नारायण का साथ रहा है। यह तो वे जानते हैं कि हम अनेक जन्मों के साथी हैं।

अनेक बार हमें पता नहीं होता है किन्तु हमारे अन्दर की भावनाएँ कार्य करती हैं। कभी-कभी हम किसी व्यक्ति से मिलते हैं तो उससे कहते हैं कि हम आपसे मिले तो पहली बार हैं किन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा है कि पता नहीं कब से आपको जानते हैं। ऐसा लगता है जैसे हमारा अनेक जन्मों का सम्बन्ध है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम उन्हें पहले से जानते हैं। इनसे पहली बार तो नहीं मिले हैं। हमें लगता है कि हम उनके बारे में सब कुछ जानते हैं और एक बार में मिलने से हमारी मैत्री स्थापित हो जाती है।

अर्जुन के विषय में भी ऐसा ही है। एक अक्षौहिणी सेना छोड़कर उन्होंने केवल श्री श्रीभगवान् को चुना। अर्जुन क्षत्रिय हैं, युद्ध में जा रहे हैं। वह अत्यन्त बुद्धिमान भी हैं, वे कुशल नीतिज्ञ हैं, धर्मशास्त्रों को जानते हैं, युद्ध की समस्त कलाओं को वह अच्छी तरह से जानते हैं। वे एक अक्षौहिणी सेना का अर्थ भी जानते हैं कि यह कुल सेना का पाँच प्रतिशत है। उस पाँच प्रतिशत सेना का त्याग करके एक निहत्थे व्यक्ति को चुना, और उनसे अपने रथ का सारथ्य करने के लिए कहा। अर्जुन के पास सारथियों की कमी नहीं थी किन्तु अर्जुन को यह आभास था कि यदि ये मेरे साथ खड़े हो जाएँगे तो मैं निश्चित ही विजय प्राप्त कर लूँगा। उन्हें यह विश्वास है कि यदि श्रीकृष्ण मेरे साथ हैं तो मैं सम्पूर्ण विश्व पर भी विजय प्राप्त कर लूँगा लेकिन उनका पार्श्वमन अभी भी आधा छुपा हुआ है जिसे श्रीभगवान् ने प्रकट कर दिया। तब अर्जुन ने साक्षात् देख लिया कि “अरे ये तो परब्रह्म परमेश्वर हैं! ये कोई साधारण देवता भी नहीं हैं। ये तो साक्षात् परमात्मा ही हैं। समस्त देवता, समस्त सिद्धगण उनकी स्तुति करते हैं।" अब अर्जुन के मन में ग्लानि आ रही है। उन्हें प्रतीत हो रहा है कि “मैंने साक्षात् ईश्वर के साथ ऐसा व्यवहार किया है। मैंने इन्हें न जाने क्या-क्या कह दिया है।” इकतालीसवें तथा बयालीसवें श्लोकों में अर्जुन श्रीभगवान् से कह रहे हैं कि “हे श्रीकृष्ण! मुझसे तो बहुत बड़ी भूल हो गई है।”

11.41, 11.42

सखेति मत्वा प्रसभं (म्) यदुक्तं(म्),
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं(न्) तवेदं(म्),
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥11.41॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि,
विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं(न्),
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥11.42॥

आपकी इस महिमा को न जानते हुए 'मेरे सखा हैं' ऐसा मानकर मैंने प्रमाद से अथवा प्रेम से हठपूर्वक (बिना सोचे-समझे) 'हे कृष्ण! हे यादव! हे सखे!' इस प्रकार जो कुछ कहा है; और हे अच्युत! हँसी-दिल्लगी में, चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते समय अकेले अथवा उन (सखाओं, कुटुम्बियों आदि) के सामने (मेरे द्वारा आपका) जो कुछ तिरस्कार (अपमान) किया गया है; हे अप्रमेयस्वरुप! वह सब आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ अर्थात आपसे क्षमा माँगता हूँ।
आपकी इस महिमा को न जानते हुए 'मेरे सखा हैं' ऐसा मानकर मैंने प्रमाद से अथवा प्रेम से हठपूर्वक (बिना सोचे-समझे) 'हे कृष्ण! हे यादव! हे सखे!' इस प्रकार जो कुछ कहा है; और हे अच्युत! हँसी-दिल्लगी में, चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते समय अकेले अथवा उन (सखाओं, कुटुम्बियों आदि) के सामने (मेरे द्वारा आपका) जो कुछ तिरस्कार (अपमान) किया गया है; हे अप्रमेयस्वरुप! वह सब आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ अर्थात आपसे क्षमा माँगता हूँ।

विवेचन- अर्जुन कह रहे हैं, “हे प्रभु! हे मेरे नाथ! हे परमेश्वर! मैं आपके इस स्वभाव को नहीं जानता था। मुझे पता नहीं था कि यह आप हैं, इसलिए आपको अपना सखा मानकर प्रेम से, प्रमाद से मैंने आपको क्या-क्या नहीं कह दिया! कितनी बार कहा- ए कृष्ण!

सुनो इधर, कभी-कभी तो मैंने यादव, गैया चराने वाले, दूध वाले भी बोला है। इस प्रकार जो कुछ भी बिना सोचे समझे बोला है, अनेक बार अज्ञानतावश, कभी प्रेम से बोला है तो वह मित्रवत हुआ और कभी-कभी प्रमाद से बोला है तो वह भी इसलिए कि मैं मित्र से जैसा चाहूँ, व्यवहार कर सकता हूँ। अनेक बार हठात् भी बोला क्योंकि मित्र आपस में ऐसा करते हैं।"

हम देखते हैं कि यदि एक मित्र किसी बात से चिढ़ता है तो सारे मित्र मिलकर उसे चिढ़ाते हैं। अनेक बार वह मित्र बुरा भी मान जाता है लेकिन मित्र उसे तब तक चिढ़ाते रहते हैं जब तक वह बुरा न मान जाए। मित्रता में ऐसा होता है। मित्र उसके धैर्य की परीक्षा लेते हैं।

अर्जुन कहते हैं कि "मैंने वह किया है जो नहीं करना चाहिए।" अर्जुन को बहुत अधिक ग्लानि प्रतीत हो रही है। वह कहते हैं कि मैं आपकी महिमा को जानता ही नहीं हूँ।

रामचरितमानस का एक प्रसंग है-

सीता स्वयंवर के समय श्रीराम ने जनक जी की प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए पिनाक धनुष तोड़ा है। धनुष टूटने पर वहाँ परशुराम जी आ गए तो उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मण जी को बहुत भला-बुरा कहा। यहाँ तो अर्जुन ने कोई अपशब्द भी नहीं बोला है, केवल मित्र समझकर उनके साथ मित्रवत् व्यवहार किया है। फिर जब लक्ष्मण जी ने अधिक क्रोध किया तो श्रीराम ने उन्हें पीछे कर दिया तथा स्वयं आगे आए। श्रीराम ने कहा कि "अरे! आप तो हमारे स्वामी हैं।

प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु।

बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु॥

"आप तो ब्राह्मण देवता हैं। आप तो हमारे स्वामी हैं। आप इस छोटे बालक पर क्यों क्रोध करते हैं? आप जो यह फरसा लेकर आए हैं, इससे यह समझ ही नहीं पा रहा है कि आप ब्राह्मण हैं, इसीलिए यह आपसे इतनी कठोर बात कर रहा है।

जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥

"आप यदि अपने मुनि की भाँति आते तो हम आपके चरणस्पर्श करते फिर आपसे उस प्रकार से बात करते। परन्तु आप तो क्रोध में भरे हुए फरसा लेकर क्रोध में भरकर चिल्लाते हुए आ गए हैं तो ब्राह्मण वाला रूप ही नहीं दिख रहा है, तो हम आपको कैसे प्रणाम करते? इसलिए हम आपको प्रणाम नहीं कर पाये। आप तो ब्राह्मण हैं।"

छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥

"आप तो विप्र हैं, आप में तो दया होनी चाहिए, कृपा होनी चाहिए। आप ऐसा क्यों करते हैं?"

हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥

आपकी और हमारी क्या समानता है? चरणों की और मस्तक की कोई बराबरी होती है क्या?

राम मात्र लघुनाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा।।

राम तो मात्र एक छोटा सा नाम है, और आप तो परशुराम हैं। आपके नाम में तो राम के साथ परशु है। आपका तो नाम ही बड़ा है।

देव एकु गुनु धनुष हमारे। नव गुन परम पुनीत तुम्हारे॥

यहाँ श्रीराम ने जो यह चौपाई कही है, उससे परशुराम जी सहम गए। साधारण व्यक्ति को इस चौपाई में कुछ विशेष नहीं प्रतीत होता किन्तु परशुराम जी अत्यन्त ज्ञानी भी हैं तथा अवतार भी हैं। श्रीराम ने कहा कि "मेरे पास तो मात्र एक धनुष है परन्तु आप तो शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता सहित नौ गुणों के स्वामी हैं। हम आपसे हारे। यहाँ ऋषियों तथा विद्वानों ने इसकी जो विवेचना की है तो उन्होंने बताया है कि इस एक वाक्य से परशुराम जी की बुद्धि ठिकाने पर आ गई। जिसने यह प्रसङ्ग पहले नहीं सुना है, उसे तो लगेगा कि इस एक वाक्य में ऐसा क्या है जिससे परशुराम जी को बुद्धि आ गई। श्रीभगवान् ने कहा, "**मैं**

परब्रह्म परमात्मा अर्थात् "एक" हूँ और तुम मेरी अष्टधा प्रकृति से निर्मित एक साधारण मनुष्य हो तुम मेरी बराबरी करते हो।" साधारण भाषा में तो ऐसा कहा है परन्तु इसका गूढ़ अर्थ इसके विपरीत है। श्रीराम ने आगे कहा-

सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

हमने आपसे बिना युद्ध किए ही हार मान ली है। हमारे अपराध क्षमा कीजिये।

अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता॥

बार-बार श्रीराम ने परशुराम जी को विप्रवर कहा जिससे वह क्रोधित हो गए तथा बोले, "तुम मुझे ब्राह्मण समझ रहे हो! मैं क्षत्रिय हूँ।" परशुराम जी ने उन्हें बहुत फटकार लगायी। तब श्रीराम ने कहा कि "हमारी धनुष तोड़ने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं थी। पुराना धनुष था इसलिए टूट गया। परशुराम जी और अधिक क्रोधित हो गये। उन्होंने कहा कि "ऐसे कैसे टूट गया? तुम्हें लग रहा है कि यह साधारण धनुष है?" रामजी ने कहा, "अरे! यह पुराना पिनाक धनुष था, मेरे स्पर्श करते ही टूट गया।"

छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

परशुराम जी ने कहा, "अरे! यह कोई साधारण धनुष नहीं है। यह शिवजी ने मुझे प्रदान किया है।"

यह धनुष क्यों टूट गया, इसका इतिहास भी हमें जानना चाहिए। एक बार ब्रह्माजी को इच्छा हुई कि मैं विष्णु जी तथा शिव जी को कुछ उपहार दूँ। वह विश्वकर्मा जी के पास पहुँचे और उनसे कहा कि मेरी इच्छा हुई है कि शिव भगवान् और विष्णु भगवान् को कुछ उपहार भेंट करूँ। क्या आप मुझे ऐसा कुछ बना कर दे सकते हैं जो अभी तक नहीं बना है? ब्रह्मा जी ने कहा कि दो ऐसे धनुष बनाएँ जो अभी तक ब्रह्माण्ड में बने नहीं है तथा जिन्हें विष्णुजी एवम् शिवजी धारण कर सकें। विश्वकर्मा जी ने कहा, "ठीक है।" उन्होंने अपने समस्त ज्ञान का उपयोग करके उच्चतम गुणवत्ता वाले दो दिव्य धनुष निर्माण किये। उन्होंने उसमें इतना कुछ लगा दिया कि दोबारा कभी ऐसे धनुष निर्माण नहीं हो सकें। एक धनुष का नाम शार्ङ्ग रखा तथा दूसरे धनुष का नाम पिनाक रखा। ब्रह्माजी ने शिवजी को पिनाक धनुष भेंट किया तथा विष्णुजी को शार्ङ्ग धनुष भेंट किया। दोनों ने प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने धनुष ले लिए। कुछ समय उपरान्त ब्रह्माजी के मन में विचार आया कि मैं तो दोनों को धनुष देकर आ गया किन्तु उसका कुछ हुआ कि नहीं मुझे कुछ ज्ञात नहीं हुआ।

जिस प्रकार हम किसी को कोई बहुमूल्य उपहार भेंट करते हैं तो मन में विचार करते हैं कि वह हमारा उपहार खोलकर देखें फिर तथा हमें बताएँ कि उन्हें वह उपहार कैसा लगा। ब्रह्माजी उनके पास वापस गए और पूछा कि "मैंने जो धनुष आपको उपहार में दिया था, वह आपको कैसा लगा?" शिवजी तथा विष्णुजी ने कहा कि "अभी हमने उसका कोई उपयोग नहीं किया है, इसलिए अभी हम नहीं बता सकते कि वह कैसा है।" ब्रह्माजी ने पूछा कि "आप उसका क्या उपयोग करेंगे?" तो उन्होंने कहा कि "तुमने हमें यह उपहार दिया है तो तुम हमें बताओ कि हम उसका कहाँ उपयोग करें?" ब्रह्माजी ने कहा कि "हम ऐसा करते हैं एक मित्रता वाली प्रतिस्पर्धा रख देते हैं। वह प्रतिस्पर्धा हार-जीत के लिए नहीं होगी, केवल मित्रता के रूप में ही होगी। आप दोनों अपने-अपने धनुष से प्रतिस्पर्धा कीजिए ताकि यह ज्ञात हो सके की कौन सा धनुष श्रेष्ठ है?" शिवजी ने कहा कि "यदि विष्णु जी भी तैयार हो जाए तो मैं इस प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार हूँ।" ब्रह्माजी विष्णुजी के पास पहुँचे। विष्णुजी भी प्रतिस्पर्धा हेतु तैयार हो गए। दोनों ने अपने-अपने धनुष से युद्ध आरम्भ किया। युद्ध आरम्भ होते ही ब्रह्माजी का समस्त ब्रह्माण्ड व्याकुल होने लगा। कुछ ही समय में ब्रह्माजी की सृष्टि जलने लगी। दोनों धनुषों का प्रभाव इतना भयङ्कर था कि उसका तेज ब्रह्माजी का ब्रह्माण्ड भी सह नहीं पाया। ब्रह्माजी तुरन्त युद्ध के मैदान में पहुँचे और युद्ध रोकने का अनुरोध करने लगे। उन्होंने कहा, "यह धनुष तो ऐसे बन गए हैं कि यदि इसका प्रयोग किया गया तो मेरा ब्रह्माण्ड बच नहीं पाएगा इस युद्ध को यहीं समाप्त कर दीजिए।" शिवजी तथा विष्णुजी ने उस समय युद्ध रोक दिया। ब्रह्माजी ने कहा, "युद्ध तो आपने समाप्त कर दिया किन्तु मेरा अनुरोध है कि यह धनुष आप अपने पास न रखें। विशेष रूप से शिवजी तो बिल्कुल ही न रखें क्योंकि आपका स्वभाव अत्यन्त क्रोधित होने वाला है। आपने अपने त्रिनेत्र से कामदेव को भस्म किया है। यदि आपके पास यह धनुष रह गया तो पता नहीं किसका विनाश कर देंगे। अतः आपसे निवेदन है कि आप यह धनुष अपने पास न रखकर किसी और को भेंट कर दीजिए।" शिवजी ने वह धनुष जनक जी के वंश में उनके पूर्वज को दे दिया। इसीलिए जनक जी की पीढ़ी में वह धनुष रखा रहा तथा अनेक पीढ़ियों से उसकी पूजा की जाती रही। इन धनुषों की विशेषता यह थी कि पिनाक का उपयोग या तो शिवजी कर सकेंगे तथा विष्णु जी शार्ङ्ग का उपयोग कर सकेंगे या फिर जिनको वह यह धनुष देंगे, वह उसका उपयोग कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त कोई भी उस धनुष को धारण भी नहीं कर सकता। इसीलिए जनक जी उस धनुष को उठा सकते हैं तथा सीता जी भी उनकी वंशज होने के कारण उसे उठा सकती हैं, लेकिन रावण आकर उस धनुष को नहीं उठा पाया। ऐसा नहीं है कि केवल रावण उसको उठा नहीं पाया, रामजी भी उस धनुष को धारण नहीं कर सके, क्योंकि पिनाक शिवजी का धनुष है तथा रामजी यदि उस धनुष को उठाएँगे

तो उसकी महिमा समाप्त हो जाएगी, क्योंकि ब्रह्माजी ने कहा है कि जिसका धनुष है, वही इसका प्रयोग कर सकता है। इसलिए वह धनुष उठते ही टूट गया क्योंकि वह शिवजी ने दिया नहीं है और रामजी ने उसे उठाया है, इसलिए वह धनुष टूटना अनिवार्य था। रामजी के उठाने से वह धनुष न उठे यह भी सम्भव नहीं तथा यदि रामजी उसे उठा लें तो ब्रह्माजी की बात झूठी हो जाएगी, इसलिए वह धनुष टूट गया। यह कारण था धनुष के टूटने का।

शार्ङ्ग धनुष विष्णु भगवान् ने ऋचीक ऋषि को दे दिया। ऋचीक ऋषि की परम्परा में परशुराम जी हुए। परशुराम जी इस धनुष को धारण करते हैं। मानस में इसको सारङ्ग लिखा गया है क्योंकि मानस अवधी भाषा में रचित ग्रन्थ है। संस्कृत में शार्ङ्ग धनुष है। परशुराम जी ने जब श्रीभगवान् की गोपनीय बातें सुन लीं तो श्रीभगवान् से कहा कि 'आप यदि वास्तव में विष्णु भगवान् हैं तो मेरा यह धनुष उठा लीजिए क्योंकि या तो यह धनुष मैं रख सकता हूँ या विष्णु भगवान् रख सकते हैं, तो आप इसको ले लीजिए ताकि मेरा सन्देह दूर हो जाए।

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥

उनके इतना कहते ही रामजी ने उस धनुष को देखा तो परशुराम जी जैसे ही उसे धनुष को उतार कर देने वाले थे, वह धनुष उनके कन्धे से स्वयमेव उतरकर उड़कर राम जी के हाथों में आ गया। रामजी ने तुरन्त उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। यह देखकर परशुराम जी अत्यन्त विस्मित हो गए। उन्होंने रामजी की स्तुति करनी आरम्भ की।

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू॥

रामजी ने पूछा कि "अब बताओ! जो प्रत्यञ्चा चढ़ाई है, उसका क्या करूँ? मेरा बाण खाली नहीं जा सकता।" परशुराम जी ने कहा, "इस बाण से आप मेरे पुण्य नष्ट कर दीजिए।" रामजी ने ऐसा ही किया। एक बाण से ही परशुराम जी का पुण्य और अहङ्कार नष्ट किया। तब परशुराम जी ने कहा, "अज्ञानतावश मैंने आपको बहुत कुछ अनुचित कह दिया है। आप दोनों भाई तो क्षमा के मन्दिर हैं। आप कृपापूर्वक मुझे उन अपराधों के लिए क्षमा कर दीजिए।"

11.43

पितासि लोकस्य चराचरस्य,
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः(ख्) कुतोऽन्यो,
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥11.43॥

आप (ही) इस चराचर संसारके पिता हैं, (आप ही) पूजनीय हैं और (आप ही) गुरुओंके महान् गुरु हैं। हे अनन्त प्रभावशाली भगवन्! इस त्रिलोकी में आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, (फिर आपसे) अधिक तो हो ही कैसे सकता है!

विवेचन- अर्जुन कहते हैं, "हे विश्वेश्वर! आप इस चराचर जगत के पिता हैं। जड़-चेतन, चर-अचर, चतुष्पद, षट्पद, अष्टपद, सभी प्रकार के प्राणियों, जिनमें चौदह भुवन तो हमारे ब्रह्माजी के इस लोक में हम जानते हैं तथा अन्य ब्रह्माजी के लोक में कितने हैं? हम नहीं जानते। हर ब्रह्माजी की अलग सृष्टि है हमारे ब्रह्मा जी की हम चौदह लोक की सृष्टि जानते हैं। जो हम जानते हैं और जो नहीं जानते हैं, आप उन सबके पिता हैं। आप तो सबसे बड़े गुरु भी हैं, क्योंकि जितने भी गुरु हैं, वे आपसे ही सुनते हैं, आपसे ही सीखते हैं और आपके द्वारा ही प्रणीत हैं। वही तो बताते हैं कि आप सबसे बड़े गुरु के रूप में पूजनीय है। आपका प्रभाव अप्रतिम है, उसके जैसा कुछ नहीं हो सकता। तीनों लोकों में आपके समान कोई भी दूसरा नहीं है। आपसे अधिक तो हो ही नहीं सकता। आपको किसकी उपमा दूँ। आपके समान कोई दूसरा नहीं है। आपसे बड़ा होने की तो कोई बात ही नहीं है क्योंकि जिसकी भी मैं उपमा दूँगा वह आपसे छोटा ही है।"

जिस प्रकार किसी व्याख्याता को कह देते हैं कि तुम उस छात्र की तरह अच्छे हो तो वह तो बुरा ही मान जाएँगे कि मैं तो व्याख्याता हूँ और आप मुझे छात्र की संज्ञा देते हैं। अब श्रीभगवान् से बड़ा तो कोई भी नहीं है, तो उन्हें किसी और की संज्ञा कैसे दे दें? अर्जुन बिलकुल हतप्रभ रह गए।

11.44

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं(म्),
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः(फ्),
प्रियः(फ्) प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥11.44॥

इसलिये स्तुति करनेयोग्य आप ईश्वरको मैं शरीर से लम्बा पड़कर प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहता हूँ। पिता जैसे पुत्रके, मित्र जैसे मित्रके (और) पति जैसे पत्नीके (अपमान)कोसहलेता है, (ऐसे ही) हे देव ! (आप मेरे द्वारा किया गया अपमान) सहनेमें अर्थातक्षमा करनेमें समर्थ हैं।

विवेचन- अर्जुन श्रीभगवान् से कहते हैं, "मैं अपने शरीर को भली भाँति आपके चरणों में निवेदित करता हूँ। आप स्तुति करने योग्य हैं और आपको पाने के लिए मैं प्रार्थना करता हूँ। पिता जैसे पुत्र के, सखा जैसे सखा के और पति जैसे प्रियतम अपनी पत्नी के अपराधों को सहन करते हैं, वैसे ही आप मेरे अपराधों को सहन कीजिये।

जब शबरी रामजी के सामने आयी तो कहने लगी-

"केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥"

शबरी को समझ में नहीं आ रहा था। ध्रुव जी ने श्रीभगवान् को प्रसन्न किया। जब श्रीभगवान् सामने आये तो ध्रुवजी बोल ही नहीं पा रहे थे। वह एकदम जड़ हो गये। बाद में जब विष्णु भगवान ने देखा कि यह बोलना तो चाह रहा है परन्तु बोल नहीं पा रहा है। अन्दर से तो भरा पड़ा है परन्तु बोल नहीं पा रहा है। फिर श्रीभगवान् अपने कोमल हाथों से शङ्ख का स्पर्श ध्रुवजी के गालों पर कराते हैं और जैसे ही ध्रुवजी के गालों पर शङ्ख का स्पर्श होता है, वह श्रीभगवान् की अद्भुत स्तुति गाने लग जाते हैं।

अर्जुन कहते हैं, "मैं दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। मैं आपको पूरा समर्पित हूँ। आप परम दयालु हैं और न्यायकारी हैं।" अर्जुन ने यहाँ पर तीन बातें कहीं हैं। पिता पुत्र के, सखा सखा के, पति जैसे अपनी पत्नी के अपराधों को क्षमा करता है, जहाँ पर प्रेम अधिक होता है, वहाँ पर सहनशीलता रहती है। जब प्रेमी-प्रेमिका का आपस में नया सम्बन्ध होता है तो कैसी भी कोई बात कह दे, एक-दूसरे को बुरा नहीं लगता और विवाह के दस वर्ष हो जाते हैं तो थोड़ा भी सहन करना मुश्किल हो जाता है। परिवार में जितने भी झगड़े होते हैं, वह प्रेम के कम होने से ही होते हैं। मल-मूत्र से ज्यादा घृणित क्या काम होता है? परन्तु सारी माताएँ अपने बच्चों के मल-मूत्र को साफ करने का काम प्रेम से करती हैं। माताएँ बच्चों को इतना प्रेम करती हैं कि सदैव गीले स्थान में स्वयं सो जाती हैं और बच्चों को सूखे में सुलाती हैं।

जब दो भाई छोटे होते हैं और विद्यालय जाते हैं, वहाँ छोटे भाई को किसी ने कुछ कह दिया तो दूसरा भाई उससे लड़ने के लिए दौड़ा आता है कि उसे छोड़ूँगा नहीं। यही दोनों भाई जब बड़े होते हैं तो छोटी-छोटी सम्पत्ति के लिए एक-दूसरे का सर फोड़ने को तैयार हो जाते हैं। बचपन में जो भाई अपना सर फुड़वा सकता था अपने उसी भाई के लिए और बाद में उसी का सर फोड़ने के लिए तैयार रहता है। जैसा प्रेम बचपन में रहता है, वैसा बड़े होने पर नहीं होता। सहन करने की क्षमता खत्म हो जाती है। बड़े होने पर वही बालक माँ को जितना अधिक कष्ट देता है, माँ कभी नहीं कहती कि मुझे कष्ट हुआ है। उस बालक द्वारा किए हुए किसी भी अपराध के बाद भी वह उससे बहुत अधिक प्रेम करती है। कई बार वह सामान फैला देता है, खाना फैला देता है परन्तु माँ उसे प्रेम से समेटती रहती है। बच्चों के इतना तङ्ग करने पर भी माँ कभी भी परेशान नहीं होती है परन्तु यही बालक जब पन्द्रह-बीस वर्ष का होने लगता है और फिर जब विवाह हो जाता है, माँ को उसका व्यवहार चुभने लगता है। पाँच वर्ष तक, जब तक प्रेम प्रगाढ़ था, तब तक तो उस बालक की सब बातें माँ सहन कर लेती थी लेकिन जैसे-जैसे बालक बड़ा होता जाता है, प्रेम बटता जाता है। पुत्र का ध्यान कहीं और बट जाता है तो माँ का ध्यान भी बटता जाता है। फिर उसकी बात सहन नहीं होती है। कोई एक बात से भी माँ रूठ जाती है और बालक भी रूठ जाता है। प्रेम प्रगाढ़ है तो सब बातें सहन हो जाती हैं। सहन न होने क अर्थ है प्रेम की कमी। इसलिए परिवार में प्रेम कैसे बढ़े, इस पर विचार करना चाहिए। सहनशीलता अपने-आप आ जाएगी क्योंकि जिससे प्रेम करते हैं उसकी सब बातें सहन हो जाती हैं।

घर के बाहर अगर कोई अनजान आदमी गाड़ी खड़ी कर दे तो हम कहते हैं कि आगे खड़ी करो और जब झाँक कर देखते हैं कि अपना ही मित्र है तो कह देते हैं कि खड़ी कर लो, कोई बात नहीं।

बड़ा सुन्दर शेर है-

यह इश्क नहीं आसाँ, बस इतना समझ लीजे

इक आग का दरिया है और डूब के जाना है |

11.45

अदृष्टपूर्वं(म्) हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा,
भयेन च प्रव्यथितं(म्) मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं(म्),
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥11.45॥

जिसको पहले कभी नहीं देखा, उस रूपको देखकर (मैं) हर्षित हो रहा हूँ और (साथ ही साथ) भयसे मेरा मन अत्यन्त व्यथित हो रहा है। (अतः आप) मुझे (अपने) उसी देवरूप (शान्त विष्णुरूप को) दिखाइये। हे देवेश! हे जगन्निवास! (आप) प्रसन्न होइये।

विवेचन- यहाँ अर्जुन कहते हैं, "हे विश्वमूर्ति!" अर्जुन यहाँ पर स्वयं ही घोषित कर देते हैं कि जो मैंने आज देखा है, वह पहले कभी नहीं देखा था। ऐसी बात नहीं है, यह किसी के द्वारा भी पहले नहीं देखा गया। अर्जुन ऐसा इसलिए कह सकते हैं क्योंकि वह स्वर्ग लोक भी गए हैं, इतने सारे वेदव्यास ऋषियों का सङ्ग किया है, युधिष्ठिर महाराज का सङ्ग किया है, सब बड़े-बड़े नीतिज्ञ महापुरुषों का सङ्ग किया है। किसी के द्वारा भी श्रीभगवान् की कथाओं में ऐसा स्वरूप सुनने को नहीं मिला है। इसका अर्थ है कि किसी ने भी यह रूप देखा नहीं है। जब अर्जुन ने देख लिया है तो हमें भी तो उनके स्वरूप का पता चल गया, चाहे हमने नहीं देखा है परन्तु ऐसा होता है, इसलिए हमें पता चल गया।

अर्जुन कहते हैं कि "मैंने तो कभी भी, किसी से न सुना न पढ़ा, इसका अर्थ है यह कभी नहीं हुआ? आपके, ऐसे पहले न देखे हुए, आश्चर्यपूर्ण रूप को देख कर मैं हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भय से भी व्याकुल हो रहा है।"

हमने तो इसे पढ़ भी लिया और सुन भी लिया। हमने नौ रस सुने हैं- श्रृङ्गार, हास्य, क्रोध, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

अर्जुन कहते हैं कि "आपने सारे ही भयानक वाले रूप दिखा दिए, कुछ अच्छे वाले भी दिखाइए। मैं खुश तो हो रहा हूँ क्योंकि जो मैंने आज तक नहीं देखा, वह मैं अब देख रहा हूँ, परन्तु मुझे यह रूप पसन्द नहीं आ रहा है। हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न होकर मुझे अपना चतुर्भुज विष्णु रूप दिखाइए।"

लेकिन अर्जुन को लगा कि यह कोई और ही चतुर्भुज रूप न दिखा दें, न जाने उनके कितने रूप हैं। अर्जुन कहते हैं, "पहले मैं आपको बताता हूँ कि मुझे कौन सा रूप देखना है-

11.46

किरीटिनं(ङ्) गदिनं(ञ्) चक्रहस्तम्,

इच्छामि त्वां(न्) द्रष्टुमहं(न्) तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन,
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥11.46॥

मैं आपको वैसे ही किरीट (मुकुट)धारी, गदाधारी (और) हाथमें चक्र लिये अर्थात चतुर्भुज रूपसे देखना चाहता हूँ। (इसलिये) हे सहस्रबाहो! हे विश्वमूर्ते! (आप) उसी चतुर्भुजरूप (शंख, चक्र, गदा पद्मसहित) हो जाइये।

विवेचन- अर्जुन कहते हैं कि "मैं आपको मुकुट धारण किए हुए, गदा और चक्र हाथ में लिए हुए, ऐसा चतुर्भुज रूप देखना चाहता हूँ।" उन्होंने स्पष्ट रूप से बता दिया कि जो श्रीभगवान् विष्णु का चतुर्भुज रूप है, वही मुझे देखना है।

हे सहस्त्रबाहु! यह नाम भी विष्णु जी का ही है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि "अर्जुन! मैं तुम्हें वह रूप दिखा रहा हूँ जो आज तक मैंने किसी को नहीं दिखाया। वह रूप भी अद्भुत है परन्तु वह तो पहले देखा गया है। मैं जो रूप तुम्हें दिखा रहा हूँ, वह तो कभी देखा ही नहीं गया।"

श्रीभगवान पहले अपने विश्वरूप की प्रशंसा करते हैं। उन्हें लग रहा है कि अर्जुन को शायद उनका यह रूप समझ नहीं आया।

11.47

श्रीभगवानुवाच
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं(म्),
रूपं(म्) परं(न्) दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं(म्),
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्॥11.47॥

श्रीभगवान् बोले - हे अर्जुन! मैंने प्रसन्न होकर अपनी सामर्थ्यसे मेरा यह अत्यन्त श्रेष्ठ, तेजस्मवरूप, सबका आदि (और) अनन्त विश्वरूप तुझे दिखाया है, जिसको तुम्हारे सिवाय पहले किसीने नहीं देखा है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "हे अर्जुन! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ इसलिए अपनी योगशक्ति के प्रभाव से (क्योंकि अन्य कोई भी व्यक्ति कितनी भी इच्छा प्रकट करे, मेरा यह रूप देखना सम्भव नहीं। यह केवल मेरे लिए सम्भव है, इसलिए) यह मेरा परम तेजोमय आदिस्वरूप, जो तुमहें दिखाया है, वह तुम्हारे अतिरिक्त अभी तक किसी ने पहले देखा नहीं। माँ यशोदा को जो रूप दिखाया था, वह भी सूक्ष्मतम था, जो कौशल्या माँ को दिखाया था, वह भी सूक्ष्म रूप था। वे तो माताएँ थीं। वे मेरे इस विश्वरूप को देखकर सम्भवत: मूर्छित हो जातीं, किन्तु तुम एक क्षत्रिय हो, वीर हो, तुम सह सकते हो, इसलिए तुम्हें मैंने यह विश्वरूप दिखाया है। मैंने अपना यह विश्वरूप तुम्हारे अतिरिक्त किसी को नहीं दिखाया है।

11.48

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैः (र्),
न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः(श्) शक्य अहं(न्) नृलोके,
द्रष्टुं(न्) त्वदन्येन कुरुप्रवीर॥11.48॥

हे कुरुश्रेष्ठ! मनुष्य लोकमें इस प्रकारके विश्वरूपवाला मैं न वेदोंके पाठसे, न यज्ञोंके अनुष्ठानसे, न शास्त्रोंके अध्ययनसे, न दानसे, न उग्र तपोंसे और न मात्र क्रियाओंसे तेरे (कृपापात्रके) सिवाय और किसीके द्वारा देखा जा सकता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कह रहे हैं कि "हे अर्जुन! विश्वलोक में इस प्रकार विश्वरूप वाला मैं, न वेदों से, न यज्ञों के अध्ययन से, न दान से, न किसी भी प्रकार की क्रिया से और न ही उग्र तपो से, तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य द्वारा देखा नहीं जा सकता।" यहाँ श्रीभगवान् यह भी स्पष्ट कर रहे हैं कि "मैं अपना यह विश्वरूप न तो अभी तक किसी को दिखाया है और यह पहली बार केवल तुम्हें दिखाया है, यह इसके बाद भी किसी को देखना सम्भव नहीं है। केवल तुम्हें यह दिखाई देगा केवल तुम ही इसके लिए पात्र हो।

यह फल साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥

श्रीभगवान् कहते हैं "कोई-कोई भी नहीं, केवल तुम मेरे दर्शन के लिए पात्र हो।" अब श्रीभगवान् अर्जुन को थोड़ा डाँटते हैं। वे कहते हैं कि "तुम समझ ही नहीं रहे हो।"

11.49

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो,
दृष्ट्वा रूपं(ङ्) घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः(फ्) प्रीतमनाः(फ्) पुनस्त्वं(न्),
तदेव मे रूपमिदं(म्) प्रपश्य॥11.49॥

यह मेरा इस प्रकारका उग्र रूप देखकर तुझे व्यथा नहीं होनी चाहिये और विमूढ़भाव (भी) नहीं होना चाहिये। (अब) निर्भय (और) प्रसन्न मनवाला होकर तू फिर उसी मेरे इस (चतुर्भुज) रूपको अच्छी तरह देख ले।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि "तुम किस प्रकार की मूर्खता की बातें कर रहे हो? मेरे द्वारा इस विकराल रूप को देखकर तुमको व्याकुलता नहीं होनी चाहिए। तुम्हें व्यथित नहीं होना चाहिए। अच्छा ठीक है! जैसा रूप तुम देखना चाहते हो, मैं तुम्हें अपना वही चतुर्भुज रूप दिखाता हूँ। अब तुम मेरे इस चतुर्भुज रूप को पुनः देखो।" श्रीभगवान् अत्यन्त कृपालु हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अर्जुन श्रीभगवान् पर नहीं बल्कि श्रीभगवान् अर्जुन पर रीझते हैं। यह बात श्रीभगवान् ने स्वयं प्रमाणित की है। श्रीभगवान् ने कहा है कि तुम्हारे अलावा मैं यह रूप किसी को नहीं दिखाऊँगा। न पहले किसी को दिखाया, न तुम्हारे बाद किसी को दिखाऊँगा। श्रीभगवान् अर्जुन पर अत्यन्त मुग्ध हुए हैं। अर्जुन श्रीभगवान् की भक्ति करें इसमें कोई बड़ी बात नहीं है, विचार करने योग्य यह है कि श्रीभगवान् अर्जुन के लिए क्या करते हैं?

11.50

सञ्जय उवाच
इत्यर्जुनं(म्) वासुदेवस्तथोक्त्वा,
स्वकं (म्) रूपं(न्) दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं(म्),
भूत्वा पुनः(स्) सौम्यवपुर्महात्मा॥11.50॥

सञ्जय बोले – वासुदेवभगवान् ने अर्जुनसे ऐसा कहकर फिर उसी प्रकार से अपना रूप (देवरूप) दिखाया और महात्मा श्रीकृष्णने पुनः सौम्यरूप (द्विभुज मानुषरूप) होकर इस भयभीत अर्जुनको आश्वासन दिया।

विवेचन- यह सब सुनकर सञ्जय ने कहा, "हे राजन! वासुदेव श्रीभगवान् कृष्ण ने अर्जुन को इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूप को दिखाया। तदुपरान्त श्रीकृष्ण ने सौम्य मूर्ति होकर भयभीत अर्जुन को धीरज प्रदान किया।

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।

किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ।।

अब अर्जुन श्रीभगवान् के उस चतुर्भुज रूप का दर्शन कर रहे हैं।

11.51

अर्जुन उवाच
दृष्ट्वेदं(म्) मानुषं(म्) रूपं(न्), तव सौम्यं(ञ्) जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः(स्), सचेताः(फ्) प्रकृतिं(ङ्) गतः॥11.51॥

अर्जुन बोले - हे जनार्दन! आपके इस सौम्य मनुष्य रूपको देखकर (मैं) इस समय स्थिरचित्त हो गया हूँ (और) अपनी स्वाभाविक स्थितिको प्राप्त हो गया हूँ।

विवेचन- अर्जुन कहते हैं, "हे जनार्दन! आपके इस शान्त रूप को देखकर अब मेरा मन शान्त हो गया है। अब मैं अपने प्राकृतिक/स्वाभाविक रूप में आ गया हूँ।

11.52

श्रीभगवानुवाच
सुदुर्दर्शमिदं(म्) रूपं(न्), दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य, नित्यं(न्) दर्शनकाङ्क्षिणः॥11.52॥

श्रीभगवान् बोले - मेरा यह जो (चतुर्भुज) रूप (तुमने) देखा है, इसके दर्शन अत्यन्त ही दुर्लभ हैं। देवता भी इस रूपको देखनेके लिये नित्य लालायित रहते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "हे अर्जुन! जो तुम मेरा चतुर्भुज रूप देख रहे हो, यह भी बहुत दुर्लभ है। देवता भी सदा इस रूप के दर्शन की आकाङ्क्षा रखते हैं। सारे देवता इस रूप के दर्शन के लिए लालायित रहते हैं।

11.53

नाहं(म्) वेदैर्न तपसा, न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं(न्), दृष्टवानसि मां यथा॥11.53॥

जिस प्रकार (तुमने) मुझे देखा है, इस प्रकार का (चतुर्भुजरूप वाला) मैं न तो वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ।

विवेचन- यह बड़ा अद्भुत श्लोक है। श्रीभगवान् कहते हैं, "हे अर्जुन! तुमने यह जो दर्शन किया है, वह न तो वेदों के अध्ययन से, न तप के द्वारा, न दान के द्वारा न ज्ञान के द्वारा न यज्ञ से मिलते हैं।

इसे हम लौकिक उदाहरण के द्वारा समझने का प्रयास करते हैं। एक शिष्य गुरुजी को प्रसन्न कर कोई विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो वे जानना चाहते कि "मैं ऐसा क्या करूँ जिससे गुरुजी प्रसन्न हो जाएँ।" तो जो अनुभवी शिष्य या उनसे बड़े शिष्य थे, उन्होंने

कहा कि गुरुजी की सेवा करो, तो शिष्य ने पूछा, “गुरुजी के चरण दबाने से ज्ञान मिल जाएगा क्या?” अनुभवी शिष्य ने कहा, “प्रातःकाल उनके जागने से पूर्व उठकर उनकी सारी व्यवस्था कर देना। उनके साथ सैर पर भी जाना। प्रतिदिन उनके लिए अच्छा-अच्छा भोजन तैयार करना। उनके लिए गुलाबजामुन लाना।” तो शिष्य ने पूछा, “गुलाबजामुन खाने पर प्रसन्न होकर वह विशेष ज्ञान दे देंगे? उन्होंने कहा, “नहीं! उससे भी नहीं मिलेगा। प्रतिदिन ऐसा करना तो किसी एक दिन गुरूजी प्रसन्न होकर वह विशेष ज्ञान तुम्हें देंगे। यह सब बातें प्रतिदिन नियम से करोगे तो किसी एक दिन किसी बात से प्रसन्न होकर गुरुजी तुम्हें वह ज्ञान दे देंगे। जब गुरु जी को प्रतीत होगा कि तुम उनके अनन्य भक्त हो, तब वे ज्ञान दे देंगे।”

एक और कथानक आता है। एक गुरुजी के एक शिष्य थे। वे बहुत बड़बोले थे, उन्होंने कहा-“गुरुजी मुझे आज ही सारा ज्ञान दे दीजिये।" गुरु जी ने कहा, “ऐसे नहीं होता है।” शिष्य ने उत्तर दिया, “आपने तो कहा था कि मृत्यु कभी भी आ सकती है। कल शरीर रहेगा या नहीं रहेगा, इसका कोई भरोसा नहीं है, तो आप आज ही ज्ञान दे दीजिए।” गुरुजी ने अपने शिष्य को एक लकड़ी से बनी छपरी /टोकरी /डलिया दे दी और कहा, “जाओ, इसमें पानी भर कर ले आओ।” शिष्य ने दस, बारह बार उस डलिया में पानी भरने का प्रयास किया। वह दो कदम चलता तो सारा पानी निकल जाता। डलिया में सींकों के बीच में इतने छिद्र थे कि पानी उसमें से निकल जाता। उसने तीन-चार घण्टे तक डलिया में पानी भरने का प्रयास किया पर पानी हमेशा निकल जाता। वह परेशान तथा क्रोधित होकर गुरुजी के पास गया और बोला, “इसमें तो पानी ठहरता ही नहीं है। आप मुझे बुद्धू बना रहे हैं। यह कैसा काम दिया आपने मुझे?” गुरुजी ने कहा, “मैं कहता हूँ न कि पानी आ जाएगा। तुम लगे रहना। छोड़ना मत।” पूरी रात वह डलिया में पानी भरने का प्रयास करता रहा। ऐसा करते-करते शिष्य को अनुभव हुआ कि अब छपरी में पानी ठहरने लगा है। पूरी रात परिश्रम करने के बाद जब सवेरे गुरुजी सोकर उठे, छपरी में से पानी अभी भी बह रहा था, पर उसमें इतना पानी बचा था कि वे गुरु जी को लाकर दे सकें। पानी से लकड़ी फूल गई और उस छपरी की सींकों के बीच में जो स्थान था, वह भर गया तो अब डलिया/ छपरी में पानी ठहरने लगा था। सारे साधन करने से टोकरी के सभी छिद्र भर गए। ज्ञान को टिकाने, स्थायी रूप से बनाने के लिए सींकों का फूलना, छिद्रों का भरना आवश्यक होता है।

श्रीभगवान् की कृपा हम सब पर होती है पर वह डलिया के छिद्रों के समान निकल जाती है। ज्ञान को टिकाना है तो छिद्रों को वेद अध्ययन से, तप से, दान से ,यज्ञ से, जप से, ध्यान से फुलाना पड़ेगा। श्रीभगवान् का यहाँ कहने का आशय यह है कि इन सबसे नहीं होगा लेकिन बिना साधन के भी ईश्वर नहीं मिलते, यह बात भी पक्की है।

मीराबाई ने जब कहा,

“मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।”

जो अर्थ हम साधारण भाषा में करते हैं, अगर यह बात सत्य होती तो मीराबाई रविदास जी को गुरु क्यों बनाती, सत्सङ्ग क्यों करतीं, वे साधुओं को भोजन क्यों करातीं। श्रीभगवान् में अनन्यता होनी आवश्यक है, दूसरा कुछ नहीं चाहिए- ऐसा भाव आवश्यक है।

यहाँ हम अनन्य का अर्थ समझते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसी अनाड़ीपन की बात करते हैं, “मैं रामजी का भक्त हूँ, इसलिए मैं शिवजी के मन्दिर में नहीं जाता हूँ। कुछ व्यक्ति कहते हैं, “मैं कृष्ण-भक्त हूँ, इसलिए मैं रामजी के मन्दिर में नहीं जाता।” अनन्य का अर्थ होता है- मेरी भक्ति श्रीभगवान् के अलावा किसी और में नहीं।

तुलसीदास जी का विशेष प्रसङ्ग आता है। वे वृन्दावन गए। वे कृष्णजी की छवि निहार रहे हैं। छवि निहारते-निहारते मन में यह भाव आ गया।

तुलसीदास जी का एक प्रसिद्ध दोहा है-

"कहा कहौं छवि आप की, भले बने हो नाथ।

तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुष बाण लो हाथ।"

इस दोहे का अर्थ है कि तुलसीदास जी भगवान् श्रीराम की छवि का वर्णन करने में असमर्थ हैं। वे कहते हैं कि श्रीराम की छवि को कैसे व्यक्त किया जाए, भले ही वे कितने भी सुन्दर क्यों न हों। तुलसीदास जी कहते हैं कि जब भगवान् राम धनुष और बाण धारण करते हैं, तब वे मस्तक नवाते हैं।

ऐसा कहते हैं कि पूरा मन्दिर खचाखच भीड़ से भरा था और तुलसीदास जी ने जब यह दोहा गाया, जोर से बिजली चमकी और विग्रह

बदल गया। जिस विग्रह में श्रीकृष्ण का रूप था, गोपियाँ साथ में थी, मुरली थी, मोरपङ्ख था, उस मन्दिर में श्रीकृष्ण-विग्रह के स्थान पर धनुष-बाण वाली मूर्ति दिखाई देने लगी। आज भी वहाँ रघुनाथ रूप में विग्रह स्थापित है।

"कित मुरली कित चन्द्रिका कित गोपियन को साथ।

अपने जन के कारणे श्री कृष्ण भये रघुनाथ ।।"

विशिष्ट बात यह है कि जब रात्रि में तुलसीदास जी सोए, भगवान् रघुनाथ उनके सपने में आए। उन्होंने कहा, "तुलसी! तुमने यह ठीक नहीं किया। तुम तो मेरे अनन्य भक्त हो। तुम्हारे लिए मैंने मुरली छोड़कर धनुष पकड़ लिया। तुम अपने शिष्यों को क्या पढ़ाओगे कि श्रीकृष्ण के मन्दिर में जाकर यह कहना कि श्रीराम बनोगे तो ही पूजा करेंगे?" यह सुनकर तुलसीदास जी को अपनी भूल का अनुभव हुआ। तुलसीदास जी विशेष भक्त थे, उनका विशेष स्थान था। हम जैसे मनुष्य यदि ऐसा कहेंगे तो कोई हमारी बात सुनेगा क्या?

तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका लिख दी। उसमें एक-एक देवता, एक-एक देवी की स्तुति के पद लिखे।

भक्ति सच्चे रूप में करनी है तो विनय पत्रिका पढ़नी ही चाहिए। विनय पत्रिका में जो गूढ़ता है, वह मानस में नहीं मिलेगी।

बहुत समय पहले एक महात्मा हुए। बक्सर के ब्रह्मलीन महात्मा नारायण दास भक्तमाली, जिन्हें प्रेम से मामाजी कहा जाता था। उनसे प्रश्न किया गया कि "अहङ्कार घटाने के लिए क्या करना चाहिए?" उन्होंने कहा, "आज से जब भी श्रीभगवान् के विग्रह के सामने जाना, दण्डवत प्रणाम करना तथा दूसरा- विनय पत्रिका पढ़ो। यह दो काम करोगे तो अहङ्कार चला जाएगा।"

तुलसीदास जी ने अद्‌भुत पदों की रचना की। भक्ति का अर्थ है जुड़ जाना। एक श्रीभगवान् से जुड़ गये तो संसार से छूट जाएँगे। न मान चाहिए, न धन चाहिए, न सम्पत्ति, न पुत्र। केवल श्रीभगवान् में अनन्य भक्ति चाहिए।

अर्जुन श्रीभगवान् की छवि को निहार रहे हैं। श्रीभगवान् कहते हैं, "हे अर्जुन! तुमने बड़ी अनन्यता से मुझे चुना है।

भजन की स्लाइड-

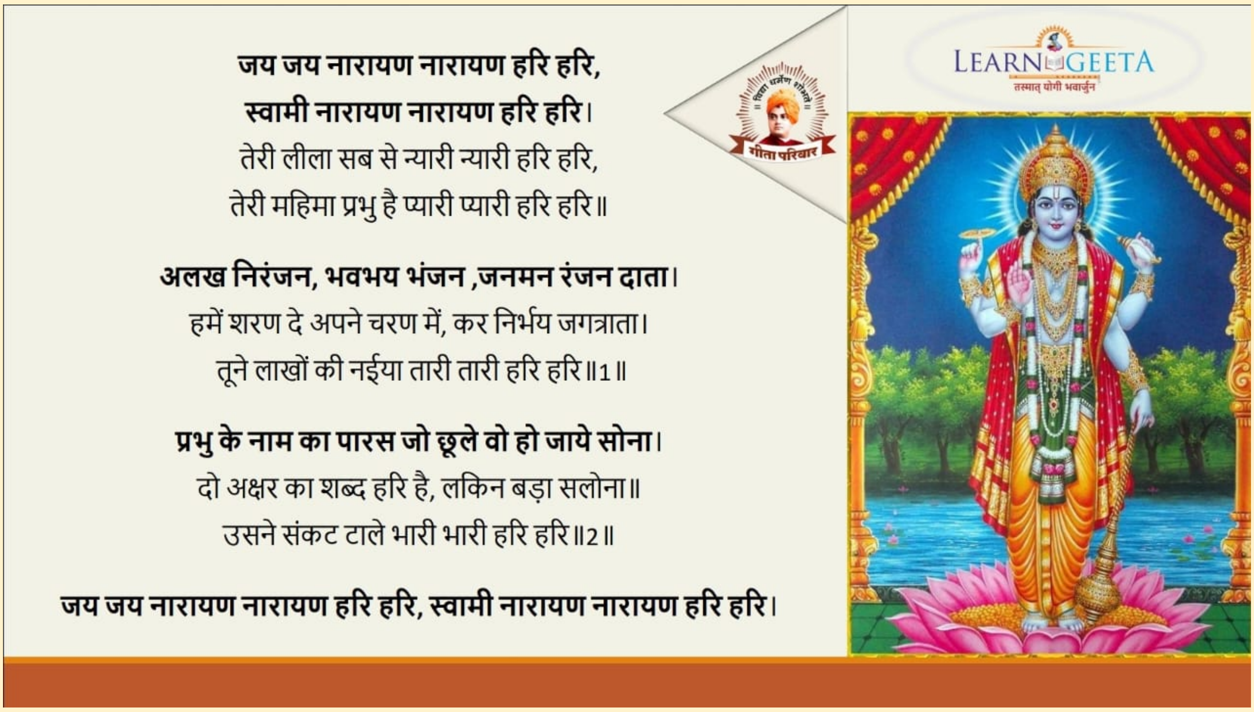

श्रीभगवान् मुझे आपके सिवाय कुछ और नहीं चाहिए।

एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास

एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास ||

हम लोगों के अन्दर तो बड़ी गड़बड़ है। तीन बातें अनन्य भक्ति से प्राप्त होती हैं। वह कौन सी तीन बातें हैं, हम आगे देखेंगे।

11.54

भक्त्या त्वनन्यया शक्य, अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं(न्) द्रष्टुं(ञ्) च तत्त्वेन, प्रवेष्टुं(ञ्) च परन्तप॥11.54॥

परन्तु हे शत्रु तापन अर्जुन! इस प्रकार (चतुर्भुजरूपवाला) मैं (केवल) अनन्य भक्तिसे ही तत्त्वसे जाननेमें और (साकाररूपसे) देखनेमें और प्रवेश (प्राप्त) करनेमें शक्य हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कह रहे हैं कि "अनन्य भक्ति द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूप देखने वाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए, तत्त्व से जानने के लिए एक ही भाव से मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ।" श्रीभगवान कहते हैं कि तीन बातें हैं- प्रत्यक्ष देखने के लिए मैं हूँ, दूसरा ज्ञान मार्ग से तत्त्व से जानने के लिए मैं उपलब्ध हूँ।

"जानत तुम्हहि तुमहि होइ जाई" एकाकार, आत्म साक्षात्कार के लिए भी मैं उपलब्ध हूँ। अनन्य भक्त की ये तीन बातें हैं। कोई भी व्यक्ति चाहे ज्ञानमार्ग से भक्ति करता होगा, भक्तिमार्ग से करता होगा या कर्म मार्ग से करता होगा, तीनों अलग-अलग प्रकार हैं, लेकिन उनकी उपलब्धता एक ही है। पाँच सूत्र श्रीभगवान् अगले श्लोक में बताते हैं। इसे महात्माओं ने साधक पञ्चक भी कहा है।

11.55

मत्कर्मकृन्मत्परमो, मद्भक्तः(स्) सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः (स्) सर्वभूतेषु, यः (स्) स मामेति पाण्डव॥11.55॥

हे पाण्डव! जो मेरे लिये ही कर्म करनेवाला, मेरे ही परायण (और) मेरा ही प्रेमी भक्त है (तथा) सर्वथा आसक्तिरहित (और) प्राणिमात्रके साथ वैरभाव से रहित है, वह भक्त मुझे प्राप्त होता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! जो पुरुष मेरे लिए ही सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को करने वाले है, मेरे पारायण है, मेरे भक्त हैं, आसक्तिरहित हैं, निर्भय है, सम्पूर्ण प्राणीमात्र में बैर-भाव से रहित है, ऐसे पुरुष मुझको प्राप्त होते है।

जो कुछ करें वह श्रीभगवान् को अर्पित करते हुए "श्रीभगवान् के लिए कर रहे हैं" इस भाव से करें।

सन्त कबीर अपने दोहे में कहते हैं-

"जहँ जहँ चलुं करूँ परिक्रमा, जो जो करूँ सो सेवा।

जब सोऊँ करूँ दण्डवत, जानें देव न दूजा।।

"मैं भी चलता हूँ, मैं अनुभव करता हूँ कि मैं श्रीभगवान् के मन्दिर की परिक्रमा कर रहा हूँ।

"श्रीकृष्णार्पणमस्तु, श्रीरामार्पणमस्तु" इस भाव से करें। सङ्गवर्जितः अर्थात् संसार की आसक्ति को छोड़ो। "केवल मेरा आश्रय लेकर कार्य करें।" हम मनुष्य अपनी मन्द बुद्धि से, अलग-अलग उपलब्धियों का आश्रय लेते हैं।

चारों भाव न हों तो पाँचवा सबसे महत्वपूर्ण है- किसी से भी बैर नहीं। कोई अपनी कितनी ही निन्दा करे, कोई अपना कितना ही

अहित करे, चाहे कोई अपने साथ कितना ही बुरा व्यवहार करे, अपनों से कितना ही द्वेष रखें, अपने मन में उसके प्रति कोई बैर भावना नहीं रखें, यह पाँच बातें जिस व्यक्ति में होंगी, वह मुझको प्राप्त कर सकता है।

ऐसी अद्भुत बात बताकर श्रीभगवान् इस अध्याय को पूर्ण करते हैं।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- शर्मा भैया

प्रश्न- अभी इस पीढ़ी में क्या किसी सन्त ने या गुरु जी ने श्रीभगवान् के स्वरूप का दर्शन किया है?

उत्तर- यदि हम किसी बड़े महापुरुष से पूछेंगे तो कदाचित् वे स्वयं नहीं कहेंगे कि उन्होंने

श्रीभगवान्

को देखा है।

श्रीभगवान्

का स्वरूप जैसा हम समझते हैं ऐसा है ही नहीं।

श्रीभगवान्

का स्वरूप मन से परे है, वे दृष्टि से परे हैं! वे अनुभूति का विषय हैं। उनकी अनुभूति भी अवश्य महापुरुषों को हुई होगी। ऐसा हम अपने वरिष्ठजन से सुनते हैं। हमारे यहाँ दो तरह से ज्ञान को प्राप्त किया जाता है, एक शास्त्र के द्वारा दूसरा आप्त वचन- श्रद्धावान पुरुषों द्वारा कहे गये वचनों द्वारा।शङ्कराचार्य जी के भाष्य ब्रह्मसूत्र में भी अनुभूति के विषय में बताया गया है।

प्रश्नकर्ता- साधना दीदी

प्रश्न- भैया ने विवेचन में बताया कि मृत्यु सन्निकट होने पर अध्याय 11 के छत्तीस से तैंतालीस श्लोक तक पढ़े जाते हैं। मृत्यु के समय गरुण पुराण एवम् कठोपनिषद् पढ़ने की भी परम्परा है। इन दोनों में क्या अन्तर है?

उत्तर- कठोपनिषद् में नचिकेता और यम का मृत्यु के विषय में संवाद है, नचिकेता ने मृत्यु के बाद क्या है- इस विषय में प्रश्न किया है। इसलिये यह उस समय पढ़े जाने के लिये उपयुक्त है। गरुण पुराण में अलग-अलग अध्यायों मे अलग-अलग व्याख्यान हैं। उसमें मृत्यु के बाद परलोकों की भी चर्चा की गई है, कौन-कौन से लोक हैं, कौन से कर्म करने के बाद किस लोक में जाना है, इसका सूक्ष्म रूप में वर्णन किया गया है। क्रिया कर्म कैसे करना है, संस्कार कैसे करना है- इसका भी वर्णन अच्छी तरह से किया गया है। इस समय गरुण पुराण पाठ अधिक उपयुक्त है, गीता जी का पारायण भी कर सकते हैं। यदि सम्भव हो तो कठोपनिषद् का पाठ करवा सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- सुमन दीदी

प्रश्न- सङ्जय जी ने धृतराष्ट्र को युद्ध का वर्णन किया, क्या सङ्जय जी को भी दिव्य दृष्टि प्राप्त थी?

उत्तर- सङ्जयजी को दिव्य-दृष्टि प्राप्त थी, वे सब कुछ आँखों के सामने पर्दे पर जीवन्त देख रहे थे।वे वही बता रहे थे, इसलिये उन्होंने भी श्रीभगवान के प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं ऐसा ही माना जाता है। माना जाता है कि अर्जुन, वेदव्यास जी, संजय, रथ की ध्वजा पर विराजमान हनुमान जी एवम् बर्बरीक ने श्रीभगवान के दर्शन किये हैं।

प्रश्नकर्ता- शशि दीदी

प्रश्न- उन्तालीसवें श्लोक - वायुर्यमोऽग्निर्वरुण:। प्रजापतिस्त्वम् प्रपितामहश्च।।

की व्याख्या में दक्ष लिखा है, दक्ष का क्या तात्पर्य है?

उत्तर- यहाँ पर दक्ष आदि प्रजापति अर्थ में लिखा है। मूल में प्रजापति ही लिखा है- जिसका अर्थ है- ब्रह्मा। श्रीभगवान इन सबके प्रपितामह हैं। हमें समझाने के लिये दक्ष प्रजापति लिखा है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां (म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'विश्वरूपदर्शनयोग' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||